प्राचीन भारत में शिक्षण व्यवस्था

सच्चिदानन्द प्रसाद वर्मा*

भारतीय शिक्षा का व्यवस्थित अध्ययन वैदिक काल के आरम्भ से ही हुआ। वैदिक शिक्षा ही भारत की सर्वप्रथम शिक्षा व्यवस्था का रूप माना जाता है। इसके विकास में वेदों का स्थान प्रथम है। वैदिक काल में शिक्षा दो रूपों में प्रचलित थी– प्रारम्भिक शिक्षा, तथा उच्च शिक्षा। प्रवेश के समय बालकों का संस्कार किया जाता था जैसे–विद्यारम्भ, उपनयन। वैदिककालीन शिक्षा के गुरूकुलों में शिष्यों को ब्रह्मचारी कहा जाता था क्योंकि उन्हें ब्रम्हचर्य का पालन करना अनिवार्य था। विद्या अध्ययन की समाप्ति पर बालक का समापवर्तन संस्कार होता था। वैदिक युग में शिक्षा को प्रकाश का वह स्रोत माना गया है जो जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में हमारा पथ–प्रदर्शन करती है। इस सम्बन्ध में हम कह सकते हैं कि ज्ञान मनुष्य का तृतीय क्षेत्र है जो उसे समस्त तत्वों के मूल को समझने में क्षमता प्रदान करता है एवं उसे उचित व्यवहार करने के लिये प्रेरित करता है। शिक्षा को अन्तर्ज्योति माना जाता था, जिसे प्राप्त करके मनुष्य संसार के सभी बंधनों से मुक्त होकर जन्म मरण से छुटकारा पा जाता था, अर्थात् मोक्ष पा लेता था क्योंकि इस काल में जीवन का मुख्य लक्ष्य मोक्ष प्राप्त करना था। इस प्रकार वैदिक काल में शिक्षा लौकिक न होकर आध्यात्मिक थी और परम ब्रहम का ज्ञान प्राप्त करने का प्रमुख साधन थी। इसी दृष्टिकोंण को ध्यान में रखकर शिक्षा के उद्देश्य निर्धारित किये गये थे। जैसा कि 'अल्तेकर' ने लिखा है–''प्राचीन भारतीय शिक्षा के उद्देश्यों एवं आदर्शों का वर्णन इस प्रकार किया जा सकता है– ईश्वर भक्ति की भावना एवं धार्मिकता का समावेश चरित्र का निर्माण, व्यक्तित्व का विकास, नागरिक एवं सामाजिक कर्तव्यों की समझ, सामाजिक कुशलता की उन्नति तथा संस्कृति का संरक्षण एवं प्रसार।''

गुरूकुल का शाब्दिक अर्थ होता है–गुरू का कुल अथवा गुरू का परिवार अर्थात् छात्र गुरू के घर में रहकर जहाँ शिक्षा प्राप्त करते थे, गुरूकुल कहलाते थे। प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त करने के उपरान्त बालक गुरूकुल में प्रवेश के योग्य हो जाता था। शूद्रों को शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार नहीं था। विद्याध्ययन प्रारम्भ से पूर्व

विभागाध्यक्ष–प्राचीन इतिहास, आल्मा इकबाल कॉलेज बिहारशहरीफ नालन्दा बिहार

ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य के बालक का उपनयन संस्कार होता था। उपनयन संस्कार के समय मनु स्मृति में बालक के आयु के विषय में लिखा है– ब्राह्मण 8 वर्ष, क्षत्रिय 11 वर्ष, वैश्य 12 वर्ष की आयु में होना चाहिये। उपनयन संस्कार के उपरान्त छात्र को शिष्टाचार की शिक्षा दी जाती थी। जब छात्र शिष्टाचार में दक्ष हो जाते थे। तब उन्हें विद्याध्ययन प्रारम्भ कराया जाता था। गुरूकुल में छात्रों की दिनचर्या नियमित थी। छात्रों को ब्रह्म मुहूर्त में उठना, नित्यकर्म से निवृत्त होकर आश्रम के लिये कुश, जल, समिधा लाना, आश्रम बुहारना, गायें दुहना, हवन करना, दूध पीना, गुरू के पास जाकर दाहिने हाथ से गुरूजी का दायां पैर और बायें हाथ से बायाँ पैर छूकर झुककर प्रणाम करना। गुरूजी द्वारा पठित पाठ सुनना, पाठ पूर्ण हो जाने पर गुरू जी की आज्ञा से शंका समाधान करना, मध्याह्न में नजदीक गांव में जाकर पका हुआ सात्विक भोजन भिक्षा में लेना। भिक्षान्न लाकर गुरू जी को देना, उनका दिया हुआ भक्ष्य लेकर मौन होकर भोजन करना। शौच संध्या उपासना आदि से निवृत्त होकर व्यायाम करना, गांये दुहना, हवन करना तथा गुरू जी अथवा किसी अभ्यागत ऋषि या मुनि से इतिहास पुराण आदि सुनना, गुरू के सो जाने पर ही सोना तथा गुरू से पूर्व उठना आदि अनिवार्य था।

वैदिक काल में शिक्षा दो रूपों में उपलब्ध थी– (1) प्रारम्भिक शिक्षा, (2) उच्च शिक्षा। प्राचीन भारत में लगभग 400 ई0 पूर्व से पहले प्रारम्भिक शिक्षा की व्यवस्था का कोई उल्लेख नहीं मिलता है, बालकों को घर में ही शिक्षा दी जाती थी। जब बालक 5 वर्ष का हो जाता था तब उसकी प्रारम्भिक शिक्षा का आरम्भ विद्यारम्भ संस्कार से होता था, जो कुलपुरोहित द्वारा सम्पन्न कराया जाता था। उच्च शिक्षा की व्यवस्था गुरूकुलों में थी। वैदिक काल में सामाजिक आवश्यकताओं के अनुरूप शिक्षा के विषयों की संख्या में वृद्धि के साथ–साथ उनके लिये अलग–अलग गुरूकुलों की स्थापना की गयी थी।

गुरूकुलों में शिक्षा सत्र लगभग 5 या 6 माह का होता था। शिक्षण सत्र का आरम्भ श्रावण मास की पूर्णिमा को उपाकर्म समारोह से होता था और पोष अथवा माघ मास की पूर्णिमा को छन्दमास उत्सर्जन समारोह के साथ समाप्त होता था। गुरूकुल में सामान्य रूप से छात्र 24 वर्ष तक अध्ययन करते थे क्योंकि मुख्य रूप से इस अवधि में तीन वर्णों के छात्रों की विद्याएँ पूर्ण हो जाती थी। ब्राह्मणों को जीवन पर्यन्त विद्याध्ययन की छूट थी। 12 वर्ष, 24 वर्ष व 48 वर्ष तक अध्ययन करने वाले छात्रों को क्रमशः बसु, रूद्र और आदित्य कहा जाता था। गुरूकुलों में परा (आध्यात्मिक) एवं अपरा (लौकिक) दोनों प्रकार के पाठ्यक्रमों की व्यवस्था थी।

वैदिक कालीन शिक्षा के गुरूकुलों में शिष्यों को ब्रह्मचारी कहा जाता था क्योंकि उन्हें ब्रम्हचर्य का पालन करना अनिवार्य था। गुरू अपने शिष्यों को पुत्रवत

मानते थे। शिष्य भी अपने गुरू को अपना मानस पिता मानते थे। उन्हें देवतुल्य समझते थे। गुरू की सेवा करने में अपना गौरव मानते थे। कोई त्रुटि या भूल हो जाने पर छात्र प्रायश्चित करके आत्मशुद्धि करते थे। वैसे दण्ड के अन्तर्गत उपवास एवं गुरू द्वारा छात्र को आश्रम से निकाल देने का प्रावधान था। गुरूकुल की समस्त व्यवस्था का दायित्व गुरू का था। गुरूकुलों में नित्य ही परीक्षा होती रहती थी। प्रति पाठ को अगले दिन छात्रों से सुनने के उपरान्त ही अगला पाठ पढ़ाते थे। लेकिन जो छात्र गुरूकुलों का 12 वर्षीय सामान्य पाठ्यक्रम/किसी एक वेद का अध्ययन पूरा कर लेते थे उन्हें स्नातक, 24 वर्षीय पाठ्यक्रम/दो वेदों का अध्ययन पूरा करने वाले को वसु, 36 वर्षीय पाठ्यक्रम/तीन वेदों का अध्ययन पूरा करने वाले को रूद्र और 48 वर्षीय पाठ्यक्रम/चार वेदों का अध्ययन पूरा करने वाले को आदित्य की उपाधि दी जाती थी।

वर्णों के अनुसार छात्रों की व्यावसायिक शिक्षा दी जाती थी। ब्राम्हणों के लिये पौरोहित्व दर्शन, कर्मकाण्ड, क्षत्रियों को दण्डनीति, राजनीति, सैन्य विज्ञान, अर्थ विज्ञान और धनुर्वेद आदि तथा वैश्यों को पशुपालन कृषि विज्ञान, व्यवसायशास्त्र आदि विषय पढ़ाये जाते थे। इसके अतिरिक्त आयुर्वेद का ज्ञान प्राप्त करने की सभी को स्वतंत्रता थी। गुरूकुलों की शिक्षण विधि प्रायः मौखिक थी। प्रायः निम्नलिखित विधियों का प्रचलन था– प्रश्नोत्तर प्रवचन, व्याख्या, विवेचन एवं कंठस्थीकरण। गुरूकुलो की शिक्षणविधि प्रश्नोत्तर विधि थी। वैदिक काल के ऋषि, मुनि/महर्षि ही गुरू हुआ करते थे जो उद्भट् विद्वान, स्वाध्यायी, धर्मज्ञ एवं आदर्श पुरूष होते थे। उनकी प्रतिष्ठा देवतुल्य थी।

जब छात्र विद्याध्ययन पूर्ण कर लेते थे तब समापवर्तन संस्कार होता था, जिसका अर्थ है, घर लौटना अर्थात् गुरू गृह से अध्ययन समाप्त कर छात्र का अपने घर लौटना/संस्कार के समय गुरू उपदेश देता था– हे शिष्य सदा सत्य बोलना, अपने कर्तव्य का पालन करना समापवर्तन के अवसर पर गुरू दक्षिणा देने की भी परम्परा थी। शिष्य अपनी सामर्थ्य के अनुरूप गुरू को कुछ न कुछ देने का संकल्प करता था। यह गुरू दक्षिणा धन, गाय, अश्व एवं अन्न आदि के रूप में दी जाती थी। इसके अलावा स्त्रीशिक्षा, सैनिक शिक्षा, चिकित्सा शिक्षा की भी व्यवस्था थी। वैदिक काल में शिक्षा के प्रमुख गुरूकुल थे तक्षशिला, मिथिला, पाटलिपुत्र, कन्नौज, तन्जौर आदि केन्द्र समस्त भारत में फैले थे।

लगभग 600 ई0पूर्व से 1200 ई0 तक का समय बौद्ध काल कहा जाता है। बौद्ध शिक्षा प्रणाली में शिक्षा से तात्पर्य बौद्ध मठों एवं विहारों में चलने वाली शिक्षा से ही लिया जाता था। बौद्ध दर्शन के अनुसार जीवन में दुःख ही दुःख है और इन दुःखों को समझना तथा दुःखों को दूर करने के उपायों का उपयोग करना

ही बोध है। वास्तव में यही बौद्ध दर्शन की शिक्षा है। शिक्षा दुःखों का ज्ञान व दुःखों को दूर करने का अष्टांग मार्ग दिखाती है। जब इसकी बोध/अनुभूति होती है और इससे मुक्ति पाने का प्रयास किया जाता है वही शिक्षा कहलाती है। वैदिककालीन शिक्षा के समान ही यह शिक्षा भी दो रूपों में व्यवस्थित थी– (1) प्रारम्भिक शिक्षा(2) उच्च शिक्षा।

प्रारम्भिक शिक्षा की व्यवस्था बौद्ध मठों में थी। मठों में प्रवेश के समय पबज्जा संस्कार होता था। पबज्जा से अभिप्राय यह था कि बालक ने अपने परिवार से अलग होकर बौद्ध मठ में प्रवेश ले लिया है। इसके लिये माता–पिता की अनुमति आवश्यक होती थी। प्रवेश के उपरान्त बालक नवशिष्य भिक्षु कहलाता था। शिक्षा ग्रहण करने का अधिकार समाज के सभी वर्गो को था। केवल चाण्डाल ही शिक्षा ग्रहण नहीं कर सकते थे। शिक्षा प्रारम्भ करने की आयु सामान्यतः 6 वर्ष + शिक्षा की अवधि भी 6 वर्ष थी। प्रथम 6 माह में सिद्धिरस्तु नाम की बालपोथी पढ़ायी जाती थी। 16 माह के पश्चात पांच शब्द तर्क, चिकित्सा, अध्यात्म, शिल्प और कला विद्याओं की शिक्षा दी जाती थी। शिक्षण विधि प्रायः मौखिक थी। शिक्षक बालक को लकड़ी के तख्ती पर वर्णमाला के अक्षरों को लिखकर उनका उच्चारण करता था और बालक उस उच्चारण का अनुकरण करता था। प्रारम्भिक शिक्षा के लिये मठों में शिक्षा का माध्यम पालि भाषा थी।

इस काल में गुरू और शिष्य दोनों ही सुसंगठित, मर्यादित, आदर्श जीवन व्यतीत करते थे, जिससे अनुशासन की समस्या उत्पन्न नहीं होती थी। अल्तेकर ने गुरू और शिष्य सम्बन्ध के विषय में लिखा है– नव शिष्य और उसके गुरू के मध्य सम्बन्धों का स्वरूप पुत्रानुरूप था। वे परस्पर सम्मान, विश्वास और प्रेम से आवद्ध थे। उपाध्याय (गुरू) को अपने शिष्यों के आवास एवं भोजन की व्यवस्था करनी होती थी। वह शिष्य के अस्वस्थ होने पर उसकी औषधि की व्यवस्था करता था और उसकी सेवा करता था।

उच्च शिक्षा का माध्यम पालि भाषा थी इसके अतिरिक्त बुद्ध के निर्देशानुसार देश की अन्य प्रचलित भाषाओं का भी उपयोग होता था। बौद्ध मठों या बिहारों में छात्रों को सामूहिक रूप से शिक्षा दी जाती थी। शिक्षा विधि मुख्यतः मौखिक थी, प्रवचन, भाषण और प्रश्नोत्तर पर विशेष बल दिया जाता था। इस काल में अनुशासन पर अधिक बल दिया जाता था। उसे मठ के नियमों एवं अनुशासन को कठोरता से पालन करना होता था। अनुशासन भंग करने का दोषी सिद्ध हो जाने पर उसे मठ या विहार से निष्कासित कर दिया जाता था।

उच्च शिक्षा की व्यवस्था भी बौद्ध मठों एवं विहारों में थी लेकिन सभी मठों/विहारों में समान विषयों की शिक्षा नहीं दी जाती थी। उच्च शिक्षा प्राप्त करने

के लिये प्रवेश के नियम अत्यन्त कठिन थे। ऋणी, अशक्त अथवा सरकारी नौकर (राज्य कर्मचारी) को प्रवेश नहीं दिया जाता था प्रवेश हेतु जाति का कोई प्रतिबन्ध नहीं था। शिक्षार्थी को बौद्ध संघ के 10 भिक्षुओं के समक्ष उपस्थित होकर उनके प्रश्नों के उत्तर देने होते थे। उत्तरों को सुनने के बाद बहुमत से यह निर्णय लिया जाता था कि शिक्षार्थी को प्रवेश दिया जाये या नहीं। विहारों में दो प्रकार का पाठ्यक्रम प्रचलित था। पहला–धार्मिक पाठ्यक्रम–जो भिक्षु एवं भिक्षुणियों के लिये निर्धारित था। बौद्ध धर्म, साहित्य, त्रिपिटक आदि मुख्य धार्मिक विषय थे। दूसरा–लौकिक पाठ्यक्रम–जो जन साधारण के लिये थे। धर्म, दर्शन, साहित्य, तर्कशास्त्र, न्यायशास्त्र, चिकित्साशास्त्र, नक्षत्र, राज्य व्यवस्था, प्रशासन आदि का ज्ञान कराया जाता था।

बौद्ध काल में शिक्षा के प्रमुख केन्द्र–तक्षशिला, नालन्दा वि0वि0, विक्रमशिला वि0वि0, बल्लभी, नादिया, मिथिला, ओदन्तपुरी आदि प्रमुख थे।

लगभग पॉच सौ पचास वर्ष तक भारत पर मुसलमानों का आधिपत्य रहा। उन्होने यहां एक नवीन शिक्षा प्रणाली का सूत्रपात किया जिसे मध्यकालीन मुस्लिम शिक्षा प्रणाली कहा जा सकता है। डॉ0 के0 ई0 ने लिखा है– ''मुस्लिम शिक्षा एक विदेशी प्रणाली थी, जिसका भारत में प्रतिरोपण किया गया और जो ब्राम्हणीय शिक्षा से अति अल्प सम्बन्ध रखकर अपनी नवीन, भूमि मे विकसित हुई।'' मध्यकालीन शिक्षा का उद्देश्य– मुसलमानों में ज्ञान का प्रसार, इस्लाम धर्म का प्रचार, सांसारिक–वैभव को प्राप्त करना, धार्मिक कट्टरता का समावेश, मुस्लिम श्रेष्ठता की स्थापना, करता था।

धार्मिक शिक्षा के अन्तर्गत इस्लाम धर्म की शिक्षा दी जाती थी जिसमें कुरान का गहन एवं विस्तृत अध्ययन, कुरान के काव्य, मु0 साहब की परम्परा, इस्लामी कानून आदि विषय सम्मिलित थे। मदरसों में शिक्षा का माध्यम फारसी था लेकिन मुसलमानों के लिये अरबी का अध्ययन भी अनिवार्य था। अधिकांश शिक्षण मौखिक रूप से होता था। न रटने पर विशेष बल दिया जाता था। मदरसों में गुरू और शिष्यों के सम्बन्ध भी मधुर थे लेकिन प्राचीनकाल के समान सम्बन्धों में मधुरता नहीं रही थी क्योंकि छात्रों में अपने शिक्षकों के प्रति त्याग एवं श्रद्धा की भावना का ह्रास होने लगा था। अनुशासन भंग करने या अन्य कोई अपराध करने पर छात्र को दण्ड दिया जाता था, दण्ड के लिये कोई नियम न होने के कारण शिक्षक छात्रों को बेंत, लात, घूसों से पीटते थे। किसी भी प्रकार की परीक्षा प्रणाली का प्रचलन नहीं था। बल्कि सम्पूर्ण वर्ष के कृत कार्य के आधार पर शिक्षक अपने विवेक से छात्र को एक कक्षा से दूसरी कक्षा में तरक्की दे देता था। किसी विषय में गहन अध्ययन या अद्वितीय प्रतिभा करने वाले छात्रों को

उपाधियों जैसे तर्कशास्त्र एवं दर्शनशास्त्र के छात्र को फाजिल, धर्मशास्त्र के छात्र को आलिम, साहित्य के छात्र को काबिल की उपाधि से विभूषित किया जाता था।

इस प्रकार हम देखते है कि वैदिक, बौद्ध और मुस्लिम शिक्षा तीनों ही धर्म प्रधान थी और इनका विकास धर्म विशेष की शिक्षा देने हेतु हुआ था। तीनों प्रणालियों के धार्मिक गुरू को ही शैक्षिक गुरू माना जाता था तथा धार्मिक प्रार्थना, धार्मिक ग्रन्थों का अध्ययन शिक्षा का अनिवार्य अंग था। तीनों शिक्षा प्रणालियों में धार्मिकता के विकास पर बल देने के साथ–साथ ज्ञान का प्रसार नैतिकता का विकास और संस्कृति के संरक्षण का प्रयास किया जाता था। प्राचीन काल में शिक्षण संस्थानों में लिखने तथा पढ़नें पर जोर न देकर मौखिक शिक्षण विधि को ही महत्व दिया जाता था। साथ ही साथ विद्यारम्भ के पूर्व विद्यार्थीयो का संस्कार भी निश्चित रूप से किया जाता था।

सन्दर्भ ग्रन्थः–सूची

1. गुप्ता, एस0पी0 और भारत में शिक्षा प्रणाली का विकास, इलाहाबाद, शारदा अलका पुस्तक भवन, (2007)
2. पाठक, पी0डी0 भारतीय शिक्षा और उसकी समस्यायें, आगरा, श्री विनोद पुस्तक मन्दिर, (2011)
3. लाल, रमनबिहारी भारतीय शिक्षा का इतिहास विकास एवं समस्यायें, मेरठ, आर0लाल0 बुक डिपो, (2012)
4. मदान, पूनम भारत में शिक्षा व्यवस्था का विकास एवं समस्यायें, आगरा–2, अग्रवाल पब्लिकेशन, (2013)
5. पारीक, महेश शैक्षिक प्रबन्ध एवं विद्यालय संगठन, जयपुर, नीलकंठ पुस्तक मन्दिर, (2010)
6. पाण्डेय, रामशुक्ल भारतीय शिक्षा की समस्यायें, आगरा, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल